IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# नारी और धर्म का संबंध तथा सशक्त होती नारी शक्ति

**डॉ. नीतू जेवरिया सह आचार्य, इतिहास राजकीय महाविद्यालय, खैरथल (राज0)**

परिवार समाज की एक प्राथमिक एवं मूल इकाई है। परिवार हर स्थान एवं काल में विधमान रहा है। परिवार के अभाव में समाज की कल्पना ही व्यर्थ है। जहाँ समाज है वहाँ परिवार भी संयुक्त रहता है। मानव जन्म से मृत्यु तक किसी न किसी परिवार से जुड़ा रहता है।

परिवार व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो विवाह, वंष–रक्त, या गोद प्रथा के सामाजिक विधि–विधानों के बन्धनों से जुड़ा हुआ है, इससे हम गृहस्थी का निर्माण करते हैं। एक परिवार में पति–पत्नी, माता–पिता, पुत्र–पुत्री, भाई–बहन सभी अपने–अपने सामाजिक दायित्वों से एक–दूसरे पर प्रभाव डालते हैं। आपसी व्यवहार और सम्बन्ध रखते हैं तथा एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं तथा फिर उसे बनाये रखते हैं।[1]

उपनिषद् काल में दर्षन के अध्ययन में स्त्रियाँ भी पीछे नहीं रही।
याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ऐसी ही विदूषी थी जो दर्षन की समस्याओं में ज्यादा रूची लेती थी।[2] इस समय के समाज में स्त्रियों की स्थिति मजबूत थी जो संगीत व नृत्य ही नहीं अपितु मीसांसा व वेदों का भी अध्ययन करती थी।

इतिहास का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि जब भी समाज में नारी षिक्षा का प्रसार हुआ तभी उसे सम्मानीय स्थान प्राप्त हुआ। चार आश्रमों का पालन स्त्रियों के लिए किये जाने के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। वैदिक और उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों का भी उपनयन संस्कार कराकर उन्हें भी ब्रहम्चर्य आश्रम में प्रवेष कराया जाता था। अर्थववेद के अनुसार नारी विवाह के पष्चात तभी वैवाहिक जीवन में सफलता प्राप्त करती हैं, जबकि उसे ब्रहम्चर्य आश्रम में भली–भाँति षिक्षित किया गया हो। उस वक्त षिक्षा विषेष रूप से धार्मिक षिक्षा होती थी, और धार्मिक षिक्षा के माध्यम से स्त्री को पारिवारिक जीवन जीने की षिक्षा दी जाती थी।

प्रो0 इन्द्र के अनुसार – कुंवारी युवतियों को षिक्षा प्राप्त करने तथा
ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के अध्ययन के लिए समान अवसर दिये जाते थे।[3]

स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में स्त्रियाँ भी पुरूषो के समान ही षिक्षा के अवसर प्राप्त करती थी जिससे उन्हें अपने जीवन को सुखी बनाने का अवसर मिला था। इस समय स्त्री विधार्थियों के दो वर्ग थे – (1) ब्रहम्वादिनी (2) सधोवधु। ब्रहम्वादिनी उस स्त्री को कहते थे जो कि जीवन पर्यन्त दर्षन और आध्यात्म का अध्ययन करती थी एवं सधोवधु 15 व 16 वर्ष तक अथवा विवाह की आयु तक अध्ययन किया करती थी। इससे सिद्ध होता है कि स्त्रियों को भी पुरूषों के समान ही षिक्षा के अधिकार प्राप्त थे। प्राचीन काल की षिक्षा में कला की महत्ता थी। जिससे मूल्य तथा संगीत षिक्षा के अनिवार्य अंग थे जिनमें अधिकतर स्त्रियाँ ही षिक्षा ग्रहण करती थी। मीरा देसाई लिखती है कि – षिक्षा के विषय में पुत्र एवं पुत्री का भेद नहीं किया जाता था।[4]

पी0एन0 प्रभु भी इस कथन की पुष्टि में कहते हैं कि जहाँ तक षिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्रियों की स्थिति सामान्यतः पुरूषों की स्थिति से असमान नहीं थी।[5]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि इस काल में नारी षिक्षा के सभी पक्षों सामाजिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक का समग्र अध्ययन करती थी तथा इस काल में षिक्षित नारियों की पर्याप्त संख्या थी।

षिक्षा मनुष्य को सभ्य और सुसंस्कृत बनाती है। व्यापक अर्थ में षिक्षा का अर्थ है अपने को सभ्य और उन्नत बनाना तथा यह कार्य जीवन पर्यन्त चलता रहता है। सभ्य बनाने के साथ–साथ षिक्षा उसकी विचारधारा में भी परिवर्तन लाने का कार्य करती है। षिक्षा ने ही भारतीय नारी को जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। प्राचीन काल में षिक्षा का प्रमुख कार्य
धर्म से ही संबंधित होता था उस समय गुरूकुल में जाकर धार्मिक ग्रन्थों का
अध्ययन किया जाता था। वेदाध्ययन प्रमुख कार्य था। उस समय षिक्षा का उद्देष्य यही होता था कि व्यक्ति, धार्मिक विष्वासों और प्रतिबन्धों को मानता हुआ अपना जीवन निर्वाह करे। षिक्षा के विषय तथा क्षेत्र दोनों धर्म से जुड़े रहते हैं। वस्तुतः धर्म और षिक्षा का परस्पर अटूट संबंध है। उद्देष्य की समानता के स्तर पर भी षिक्षा और धर्म एक ही है। षिक्षा का प्रमुख कार्य हमारी नैतिक भावनाओं के सम्यक विकास के साथ–साथ चरित्र का विकास करना भी है।
धर्म ही मानव चरित्र को ऊपर उठाता है। धर्म के प्रमुख लक्ष्ण क्षमा, अस्तेय, सुचिता, विद्या, सत्य आदि चरित्र की गरिमा से ही सम्बद्व है। षिक्षा हमारे व्यक्तित्व का विकास कर उसमें चार–चाँद लगाती है। हममें आत्म–सम्मान, आत्म संयम, आत्मविष्वास, विवेक व न्याय की भावना को जाग्रत करती है।

इन सभी भावनाओं को विकसित करने में हमें धर्म की निरन्तर आवष्यकता होती है। धार्मिक षिक्षा हमसे सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन करने का आग्रह करती है। हिन्दू धर्म मानव–कल्याण की भावना को प्रमुखता देता है तथा इसका उद्देष्य ही मानव में सद्गुणों का विकास करना व सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण करना है।

नारी षिक्षा ने हमारे पारिवारिक जीवन को भी प्रभावित किया है। स्त्री परिवार की धुरी होती है। एक नारी के षिक्षित होने का अर्थ है पूरे परिवार का षिक्षित होना।

स्वामी विवेकानन्द कहते है कि –''हम चाहते है कि भारत की स्त्रियों को ऐसी षिक्षा दी जाये जिससे निर्भय होकर भारत के प्रति अपने दायित्व को भली–भाँति निभा सके तथा संघमित्रा, अहिल्याबाई, लक्ष्मी बाई, मीरा आदि भारत की महान देवियों द्वारा चलाई गई अमिट परम्पराओं को आगे बढा सकें। वीर प्रसू स्त्रियाँ बन सके। भारत की नारियाँ पवित्रता एवं त्याग की मूर्ति हैं क्योंकि उनके पास वह बल तथा शक्ति है जो सर्वषक्तिमान ईष्वर के चरणों में सम्पूर्ण आत्म–समर्पण से प्राप्त होता है। मेरा तो दृढ विष्वास है कि षिक्षा ही धर्म का मेरूदण्ड है।[6]

इस प्रकार निष्कर्षतः कह सकते है कि धर्म और षिक्षा एक दूसरे से संबंधित है। षिक्षा और धर्म दोनों का ही प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा है। षिक्षा ने उसे सोचने, समझने की शक्ति दी है। तथा धर्म के आडंबरों, अंधविष्वासों से लड़ने की ताकत भी प्रदान की है। धर्म ने उसे धार्मिक मान्यता प्रदान की हैं। षिक्षा के कारण ही उसमें धर्म के सही और वास्तविक रूप को समझने की
क्षमता दी हैं। स्त्री धर्म में आस्था जरूर रखती है किन्तु धर्मान्धता के नाम पर वह अत्याचार सहन करने को तैयार नहीं है। भाग्य या कर्मो के फल की दुहाई देकर नारी को दण्डित नहीं किया जा सकता।

पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा भी था कि – फ्रांस के किसी व्यक्ति ने लिखा था किसी भी देष की स्थिति को देखने का सबसे श्रेष्ठ उपाय उस देष की स्त्रियों की स्थिति का पता लगाना है, मेरे विचार में यह ठीक है। भूतकाल के कई उदाहरणों के बाद भी यह कहना सत्य होगा कि भारत में पिछले सैकड़ों वर्षो से

महिलाओं की स्थिति कानूनी, सामाजिक या सार्वजनिक जीवन में किसी भी दृष्टिकोण से पीछे नही रही है। मुझे प्रसन्नता है कि संसद ने कुछ महिला अधिकारों को लेकर विधान पारित किये हैं जिन्होने महिलाओं को कानूनी रूप से कई बन्धनों से छुटकारा दिलवाया है। तथा इस प्रकार स्त्रियों की स्थिति सुधारने में मदद पहुँचाई है, फिर भी बाधायें है जिन्हे दूर करना है।[7]

समाज सुधार आन्दोलनों के अलावा ईसाई मिषनरियों, ब्रिटिष शासन, महिला आंदोलन, पाष्चात्य षिक्षा एवं सभ्यता ने भी महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने में अपना योगदान दिया। सबसे अधिक प्रभाव महात्मा गाँधी के आंदोलनों से पड़ा जिसमें उन्होने स्त्रियों को सक्रिय रूप से अपने आंदलनों से जोडा। प्रेरित होकर लाखों स्त्रियों ने सत्याग्रह किया और वे जेलों में गई। इन आन्दोलनों ने स्त्रियों को घर की चार–दिवारियों से बाहर निकाला, उन्हें चूल्हे–चौकी से आजाद कर लाठी और गोली का सामना करने के लिए तैयार किया जिससे उन्हें अपनी देवीय शक्ति का आभास हुआ। अपनी सार्मथ्य और योग्यता में नवीन विष्वास प्राप्त कर अब वे इस बात से परिचित हो गई कि
घर और समाज में अपना उचित स्थान प्राप्त करने के लिए उन्हे संघर्ष करना पड़ेगा।

श्री पाणिक्कर लिखते हैं कि ''मदिरा की दुकानों पर धरना देने, विदेषी वस्त्रों का बहिष्कार करने, सविनय अवज्ञा में जो कुषलता स्त्रियों ने दिखाई उसके सामने पुरूष भी लज्जित हो गये और गाँधी जी ने उनकी सेवाओं की बार–बार सराहना करते हुए कहा कि स्त्रियाँ उनके आन्दोलन की मेरूदण्ड है। सामाजिक दृष्टि से यह बात इतनी महत्वपूर्ण भले ही ना हो किन्तु यह अवष्य महत्वपूर्ण तथ्य है कि उन्होने सामाजिक निषेधाज्ञों को ताक पर रख दिया और जो सामाजिक श्रृंखलायें उन्हें जकड़े हुये थी, उनको ढीला कर दिया।[8]

भारत को आजाद हुये 75 वर्ष से अधिक समय हो चुका है। इन वर्षो में भारतीय समाज में अनेक राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन हुये है। भारतीय नारी भी इन परिवर्तनों से अछूती नही रही है। परिणामस्वरूप आज की षिक्षित नारी अपने जीवन में परिवर्तन लाने के लिए दृढ संकल्पित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः


1- रामधारी सिंह दिनकरः संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एंड संस, दिल्ली 1973 पृ.7

2- अर्थववेदः 11/5/18

3- प्रो. इन्द्रः दि स्टेटस ऑफ वुमेन इन ऐंषियेन्ट इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस 1955 पृ. 133

4- नीरा देसाईः वुमेन इन मोर्डन इण्डिया, वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिषर्स, मुबई 1957 पृ.11

5- पी. एन. प्रभुः हिन्दू सोषल ऑर्गेनाईजेषन, मुबई 1978, पृ. 258

6- स्वामी विवेकानन्द : भारतीय नारी, रामकृष्ण आश्रम, नागपुर 1982 पृ. 11

7- जवाहरलाल नेहरूः वुमेन इन इण्डिया, 1958 पृ. 7

8- श्री के0 एम0 पणिक्करः हिन्दू समाज निर्णय के द्वार पर, एषिया पब्लिषिंग हाउस, मुबई 1956 पृ. 37